भगवान् श्रीआदि-शङ्कराचार्य द्वारा विरचित

सौन्दर्य-लहरी

पद्यानुवाद-सहित

भगवान् श्रीआदि-शङ्कराचार्य द्वारा विरचित

सौन्दर्य-लहरी

(पद्यानुवाद-सहित)

सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल,

प्रकाशक

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

प्रकाशक
शाक्त-साधना-पीठ
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-राज-२११००६

तृतीय संस्करण
कार्तिक पूर्णिमा, २०६३ वि०- ५नवम्बर, २००६

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-०६
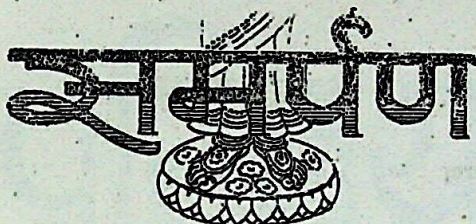
विधि-हरि-शङ्कर-देव-मय, निष्कल, सकल अनाम ।
नमो नमः श्री 'राष्ट्र-गुरु', स्वामि-चरण सुख-धाम ।।

श्रीमत् - परमहंस परिव्राजकाचार्य निगमागमाद्यखिल-शास्त्र-परिवार-पारीण सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र योगीन्द्र 'राष्ट्र-गुरु' श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, श्री पीताम्बरा-पीठ, वनखण्डी, दतिया (म० प्र०) :
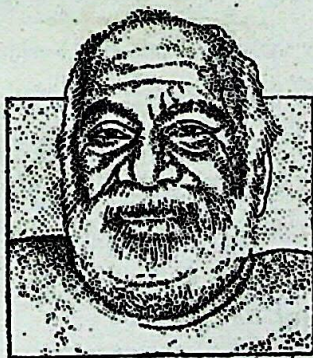
महर्षे !

दुर्बल हो जाने से तनु से, चञ्चल होने से मन से—
हो न सकी स्वामिन् ! तव सेवा किसी तरह भी इस जन से ।
अतः, दीन-गण-मनोऽभीष्टकर हैं त्वदीय जो युगल-चरण,
उन पर ही 'सुन्दर-लहरी' का यह अनुवाद-कमल अर्पण ।

—चरण-रज-सेवक
बलवीर सिंह

अ-नु-क्र-म

सूचना

संस्कृत व हिन्दी में 'पाठ' करने की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में पृष्ठ ६, ८, १०, १२···में 'सौन्दर्य - लहरी' का 'मूल' - पाठ दिया गया है और पृष्ठ ७, ९, ११, १३···में 'सौन्दर्य - लहरी' का 'पद्यानुवाद'-पाठ दिया गया है।

जो बन्धु संस्कृत में पाठ कर सकते हों, वे ६, ८, १०, १२···पृष्ठों के अनुसार 'पाठ' कर सकते हैं और जो बन्धु हिन्दी में 'पाठ' करना चाहते हों, वे ७, ९, ११, १३···पृष्ठों के अनुसार 'पाठ' कर सकते हैं।
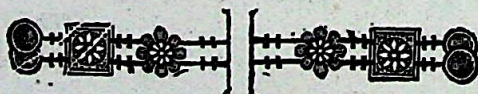
'सौन्दर्य-लहरी' का अत्यधिक माहात्म्य है। यह एक सिद्ध स्तव-राज है। यही कारण है कि इसकी कितनी ही व्याख्याएँ और टीकाएँ विद्वानों तथा महात्माओं द्वारा हो चुकी हैं।

संस्कृत जाननेवाले भक्त - जन तो इसका नियमित रूप से पाठ किया करते हैं। जो संस्कृत नहीं जानते, उनकी सुविधा के लिए दतिया - निवासी 'कवि - शिरोमणि' श्री फौजदार बलवीर सिंह ने हिन्दी - पद्यानुवाद प्रस्तुत कर दिया है, जिसके लिए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

आशा है कि संस्कृत से अनभिज्ञ भक्त-जन भी इस अनुवाद के फल-स्वरूप 'सौन्दर्य-लहरी' का पाठ कर उससे लाभ उठा सकेंगे।

—'कौल-कल्पतरु' देवीदत्त शुक्ल
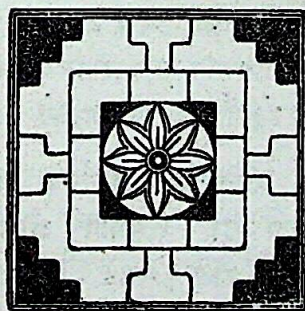
सौन्दर्य-लहरी

(मूल-पाठ)

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥
अतस्त्वामाराध्यां हरि-हर - विरिञ्च्यादिभिरपि ।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत - पुण्यः प्रभवति ॥१

तनीयांसं पांशुं तव चरण - पंकेरुह - भवम् ।
विरिञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलान् ॥
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसाम् ।
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलन - विधिम् ॥२

अविद्या - नामन्तस्तिमिर - मिहिर - द्वीप - नगरी ।
जडानां चैतन्य - स्तबक - मकरन्द - स्रुति - झरी ॥
दरिद्राणां चिन्ता - मणि - गुणनिका जन्म - जलधौ ।
निमग्नानां दंष्ट्रा मुर - रिपु - वराहस्य भवती ॥३

त्वदन्यः पाणिभ्यामभय - वरदो दैवत - गणः ।
त्वमेका नैवासि प्रकटित - वराभीत्यभिनया ॥
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छा - समधिकम् ।
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥४

हरिस्त्वामाराध्य प्रणत-जन - सौभाग्य - जननीम् ।
पुरा नारी भूत्वा पुर - रिपुमपि क्षोभमनयत् ॥
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रति - नयन - लेह्येन वपुषा ।
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥५

सौन्दर्य-लहरी

(पद्यानुवाद)

शिव यदि शक्ति-सहित हैं, तो हैं करने में सब कार्य समर्थ।
और नहीं जो, केवल हैं, तो हैं निष्क्रिय, निस्पन्दित व्यर्थ॥
अतः तुम्हीं हरि-विधि-हरादि से हो निश्चय आराधन योग्य।
अकृत-पुण्य जन कर सकता फिर कैसे तव नुति-प्रणति मनोज्ञ॥१

देवि! तुम्हारे पद-पद्मों के किञ्चित रज-कण को पाकर।
रचते ब्रह्मा विविध भाँति के अविकल लोकों को सुन्दर॥
धारण करते जिन्हें शेष हो विष्णु सहस्रों मस्तक पर।
तथा भस्म कर जिन्हें, स्व-तनु पर उद्धूलन हैं करते हर।।२

मूढ़ों के हो हृदय - तिमिर को, तुम रवि-द्वीप-स्थित नगरी।
जड़ जन को चैतन्य - प्रसूत - स्तवक - परागोल्लास-झरी॥
दीनों को चिन्तामणि - माला, जन्म-मरण भव पारावार—
मग्नों को मुर - रिपु वराह की दंष्ट्रा हो, करतीं उद्धार॥३

तुमसे अन्य देव - गण देते, हाथों से वर और अभय।
एक तुम्हीं पर कभी न करतीं, वराभीति का यह अभिनय॥
भव-भय हरने में, करने में वाञ्छा-समधिक फल का दान।
शरण-दायिनी! चरण तुम्हारे परम निपुण हैं करुणा-वान॥४

भक्तों को सौभाग्य-प्रदायिनि! तव आराधन कर कमलेश—
पुरा-काल में नारी होकर, किया शम्भु को क्षुब्ध विशेष॥
तुम्हें नमन कर, त्यों रति-नयनास्वादित अति सुन्दर तनु धार।
बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के भी मन को मोहित करता मार॥५

धनुः पौष्पं मौर्वी मधु-कर - मयी पञ्च - विशिखाः।
वसन्तः सामन्तो मलय - मरुदायोधन - रथः ॥
तथाऽप्येकः सर्वं हिम-गिरि-सुते ! कामपि कृपाम्।
अपाङ्गात् ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥६

क्वणत्-काञ्ची - दामा करि-कलभ-कुम्भ-स्तन-नता।
परि-क्षीणा मध्ये परिणत - शरच्चन्द्र - वदना ॥
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना कर - तलैः।
पुरस्तादास्तां नः पुर - मथितुराहो पुरुषिका ॥७

सुधा - सिन्धोर्मध्ये सुर - विटपि - वाटी-परि-वृते।
मणि-द्वीपे नीपोपवन - वति चिन्ता - मणि - गृहे ॥
शिवाकारे मञ्चे परम - शिव - पर्य्यङ्क-निलयाम्।
भजन्ति त्वां धन्याः कति-चन चिदानन्द - लहरीम् ॥८

महीं मूलाधारे कमपि मणि - पूरे हुत - वहम्।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ॥
मनोऽपि भ्रू - मध्ये सकलमपि भित्वा कुल - पथम्।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥९

सुधा - धारा - सारैश्चरण - युगलान्तर्विगलितैः।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नाय - महसा ॥
अवाप्य स्वां भूमिं भुजग - निभमध्युष्ट-वलयम्।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुल-कुण्डे कुहरिणि ! ॥१०

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिव - युवतिभिः पञ्चभिरपि।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल - प्रकृतिभिः ॥
त्रयश्चत्वारिंशद् - वसु - दल - कलाब्ज - त्रिवलय—
त्रि-रेखाभिः सार्द्धं तव भवन - कोणाः परिणताः ॥११

भ्रमरों की मौर्वी का जिसका पुष्प-धनुष है, जिसके बाण—
कुसुमों के हैं पाँच, मलय मारुत है जिसका सङ्गर-यान ॥
है सामन्त वसन्त, तदपि, पा तवापाङ्ग की कृपा अनङ्ग ।
हिम-गिरि-कन्ये ! विजयी होता इस जग पर वह एक अनङ्ग ॥६

मुखरित काञ्ची कृश कटि शोभित, करि-कलभों के कुम्भ-समान–
कुच-युग से कुछ झुकी हुई, मुख शरच्चन्द्र के सम छविमान ॥
चारों कर - कमलों में धारे अद्‌भुत पाशांकुश-धनु-बाण ।
करै शम्भु - पुरुषत्व - बोधिनी हमें सदा निज दर्शन-दान ॥७

सुधा-सिन्धु के मध्य कल्प - वृक्षों की वाटी से वेष्टित—
मणि-द्वीप में नीप-वनों के चिन्तामणि-गृह में सज्जित—
शिवाकार-मञ्च - स्थित पर-शिव - पर्यङ्कोपरि शोभा-वान ।
चिदानन्द - लहरी, तुमको हैं भजते कोई धन्य सुजान ॥८

मूलाधार-स्थित भू को, मणिपूर-स्थित जल, स्वाधिष्ठान—
मध्य अग्नि को, हृदि मारुत को, उसके ऊपर गगन निदान ॥
भृकुटि-मध्य में मन को, यों कर भेदन सब कुल-चक्र नितान्त ।
सहस्रार - पङ्कज में पति-सङ्ग करती हो विहार एकान्त ॥९

युगल चरण-कमलों से निकली परमामृत-धारों से तूर्ण ।
करती हुई देह का सिञ्चन, पुनः षडाम्नायों से पूर्ण ॥
कर स्व-भूमि को प्राप्त, मुदित तुम सार्ध त्रि-वलय सर्पाकार–
निज स्वरूप-धारण कर, कुहरिणि ! सो जातीं कुल-कुण्डाधार ॥१०

शिव के चार त्रिकोण, शक्ति के पाँच त्रिकोणों से अविकल ।
शम्भु भिन्न नव मूल प्रकृति के तैंतालिस त्रिकोण वसु-दल ॥
षोडश दल, त्रि-वलय, भूपुर की रेखा चतुर्द्वार-समवेत ।
तव 'श्री-चक्र' नाम का निर्मित होता सुन्दरि ! दिव्य निकेत ॥११

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिन - गिरि - कन्ये ! तुलयितुम् ।
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चि - प्रभृतयः ॥
यदाऽऽलोकौत्सुक्यादमर - ललना यान्ति मनसा ।
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिश - सायुज्य - पदवीम् ॥१२

नरं वर्षीयांसं नयन - विरसं नर्मसु जडम् ।
तवापाङ्गालोके पतितमनु - धावन्ति शतशः ॥
गलद्-वेणी-बन्धाः कुच - कलश - विस्रस्त-सिचया ।
हठात् त्रुट्यत् - कांच्यो विगलित-दुकूला युवतयः ॥१३

क्षितौ षट् - पञ्चाशद्, द्वि - समधिक-पञ्चाशदुदके ।
हुताशे द्वा - षष्टिश्चतुरधिक - पञ्चाशदनिले ॥
दिवि द्विः-षट्-त्रिंशन्मनसि च चतुः-षष्टिरिति ये ।
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुज - युगम् ॥१४

शरज्ज्योत्स्ना - शुभ्रां शशि-युत-जटा-जूट-मुकुटाम् ।
वर - त्रास - त्राण - स्फटिक-घटिका-पुस्तक-कराम् ॥
सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां सन्निदधते ।
मधु-क्षीर - द्राक्षा - मधुरि - मधुरीणाः भणितयः ॥१५

कवीन्द्राणां चेतः - कमल - वन - बालातप-रुचिम् ।
भजन्ते ये सन्तः कति - चिदरुणामेव भवतीम् ॥
विरिञ्चि-प्रेयस्यास्तरुण - तर - शृङ्गार - लहरी—
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी ॥१६

सवित्रीभिर्वाचां शशि-मणि- शिला - भङ्ग - रुचिभिः ।
वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि ! सञ्चिन्तयति यः ॥
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गि - सुभगैः ।
वचोभिर्वाग्-देवी - वदन - कमलाऽऽमोद - मधुरैः ॥१७

हिम-गिरि-तनये ! तुलना करने को अतिशय सौन्दर्य त्वदीय।
ब्रह्मा-प्रमुख सु-कवि करते हैं, विविध कल्पनाएँ कमनीय ॥
जिसे देख, उत्कण्ठा से दुष्प्राप्य कठिन तप के द्वारा—
'शिव - सायुज्य - सुपदवी' निज मन से पातीं सुर-दारा ॥१२

जो अति वृद्ध, महा-कुरूप हैं, केलि-कला में हैं जड़ दीन।
कृपा-कोर तव हो जाने से, हठ से उनके सङ्ग प्रवीण ॥
खुले केश हैं जिनके, टूटी काञ्ची, कुच कञ्चुकी-विहीन।
दौड़ा करतीं ऐसी शतशः विगलित - वसना युवति नवीन ॥१३

भू में छप्पन, बावन जल में, वह्नि-वायु बासठ-चउअन।
तथा बहत्तर नभ में, चौंसठ मन में हैं जो कान्त-किरण ॥
उनके ऊपर नवल कमल-सम युगल चरण हैं तव उप-नीत।
(यानी, तुम ही तत्त्व-मयी हो और तुम्हीं हो तत्त्वातीत) ॥१४

स्वच्छ शरज्ज्योत्स्ना-सी शुभ्रा, जटाजूट शशि-मुकुट विशाल।
चारों कर में लिए वराभय, पुस्तक एवं स्फटिक-सु-माल ॥
तुमको बिना सकृत नमन कर, कैसे पा सकता विद्वान ?
महा-मधुर-मधु-पय-द्राक्षा-सी सत्-कवियों की सूक्ति महान ॥१५

कविवर-चित्त कमल-वन को नित बाल-सूर्य की कांति समान—
अरुण-स्वरूपा तुमको कोई जो कवि भजते हैं मति-मान।
सरस्वती की परम नवीना, मधु-शृङ्गार-लहरी गम्भीर—
वाणी से मन रञ्जन करते, सन्तत सुजनों का वे धीर ॥१६

सुन्दर शुभ्र देह-द्युति-शोभित चन्द्र-कान्त-मणि शिला-समान—
वशिन्यादि के सहित तुम्हारा, मातः ! जो करता है ध्यान ॥
वाग्-देवी-मुख-कमलामोदित, सुन्दर वचनावली - प्रपूर्ण—
सरस सूक्तियों से होता वह महा-काव्य का कर्त्ता तूर्ण ॥१७

तनुच्छायाभिस्ते तरुण - तरणि - श्री - धरणिभिः ।
दिवं सर्वामुर्वीमरुणिम - निमग्नां स्मरति यः ॥
भवन्त्यस्य त्रस्यद् - वन - हरिण-शालीन-नयनाः ।
सहोर्वश्या वश्याः कति कति न गीर्वाण - गणिकाः ॥१८

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुच - युगमधस्तस्य तदधो ।
हकारार्द्धं ध्यायेद्यो हर-महिषि ! ते मन्मथ-कलाम् ॥
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यति - लघु ।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दु - स्तन - युगाम् ॥१९

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरण - निकुरम्बाऽमृत - रसम् ।
हृदि त्वामाधत्ते हिम - कर - शिला-मूर्तिमिव यः ॥
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव ।
ज्वर - प्लुष्टं दृष्ट्या सुखयति सुधा-धार-सिरया ॥२०

तडिल्लेखा-तन्वीं तपन - शशि - वैश्वानर-मयीम् ।
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् ॥
महा - पद्माटव्यां मृदु - तमल-मायेन मनसा ।
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लाद - लहरीम् ॥२१

भवानि ! त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं स-करुणाम् ।
इति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि ! त्वमिति यः ॥
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निज - सायुज्य - पदवीम् ।
मुकुन्द - ब्रह्मेन्द्र - स्फुट - मुकुट - नीराजित - पदाम् ॥२२

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरि - तृप्तेन मनसा ।
शरीरार्द्धं शम्भोरपरमपि शंके हृतमभूत् ॥
यदेतत् त्वद् - रूपं सकलमरुणाभं त्रि - नयनम् ।
कुचाभ्यामानम्रं कुटिल - शशि - चूडाल - मुकुटम् ॥२३

तरुण सूर्य की कान्ति-सदृश, तव तनु छाया-लाली में मग्न।
रक्त-वर्ण-मय भूमि-स्वर्ग का, चिन्तन जो करता संलग्न॥
भय-भीता-वन-हरिणी-नयना, सुर-गण-गणिकाएँ अभिराम।
वशीभूत उर्वशी-सहित वह, कर लेता है त्वरित सकाम॥१८

मुख को बिन्दु-रूप से, उसके नीचे युगल बिन्दु कुच मान।
उसके नीचे तीन कोण-युत, काम-कला का करके ध्यान॥
वनिताओं को करता है जो शीघ्र क्षुब्ध, यह तो लघु बात।
वह रवीन्दु-कुच-मयी त्रिलोकी को विचलित करता है ख्यात॥१६

जो तनु-किरण-पुञ्ज बिखेरती हुई सुधा-रस से अम्लान—
चन्द्रकान्त-मणि-शिलामूर्ति-सी, तुमको करता मन में ध्यान॥
वह सर्पों का दर्प - शमन है करता, गरुड़ - समान दुरन्त।
करता त्यों माँ! सुधा-दृष्टि से, ज्वराक्रान्त को सुखी तुरन्त॥२०

विद्युल्लेखा के सम सूक्ष्मा, रवि-शशि अग्नि-मयी द्युति-मान—
षट्-चक्र-स्थित कमलों पर, जो सहस्रार में धर कर ध्यान॥
मायिक मल-विरहित-मन योगी-गण तव परम कला स-उमङ्ग।
कर साक्षात् हृदय में, धारण करते परमाह्लाद-तरङ्ग॥२१

'हे भवानि! तुम मुझ सेवक पर कीजे करुणा-दृष्टि-निपात।'
ऐसा कह कर, जो स्तुति करने की इच्छा करता मनु-जात॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेन्द्र-मुकुट-चय-नीराजित पद-पद्म महान—
निज सायुज्य-सु-पदवी उसको करती हो तुम शीघ्र प्रदान॥२२

शिव-वामाङ्ग-हरण करके भी देवि! अतृप्त मन से फिर अन्य-
अङ्ग-हरण करने की इच्छा, अहो! कर रही हो तुम धन्य॥
अर्ध-चन्द्र-चूडाल-मुकुट-मय, त्रि-नयन, युग कुच नम्र विशाल-
रूप तुम्हारा, क्योंकि शम्भु में होता है प्रतीत यह लाल॥२३

जगत् - सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते ।
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति ॥
सदा - पूर्वः सर्वं तदिदमनु-गृह्णाति च शिवः ।
तवाज्ञामालम्ब्य क्षण - चलितयोर्भ्रू - लतिकयोः ॥२४

त्रयाणां देवानां त्रिगुण - जनितानां तव शिवे !
भवेत् पूजा तव चरणयोर्या विरचिता ॥
तथा हि त्वत् - पादोद्वहन - मणि-पीठस्य निकटे ।
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलित - करोत्तंस - मुकुटाः ॥२५

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिम् ।
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम् ॥
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलति दृशाम् ।
महा-संहारेऽस्मिन् विहरति सति त्वत् - पतिरसौ ॥२६

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा - विरचनम् ।
गतिः प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुति - विधिः ॥
प्रणामः सम्वेशः सुखमखिलमात्मार्पण - दशा ।
सपर्या - पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥२७

सुधामप्यास्वाद्य प्रति - भय -जरा - मृत्यु-हरिणीम् ।
विपद्यन्ते विश्वे विधि - शत - मखाद्या दिविषदः ॥
करालं यत् क्ष्वेलं कवलित - वतः काल - कलना ।
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ! ताटङ्क - महिमा ॥२८

किरीटं वैरिञ्च्यं परि - हर पुरः कैटभ - भिदः ।
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारि - मुकुटम् ॥
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुप - यातस्य भवनम् ।
भवस्याभ्युत्थाने तव परि - जनोक्तिर्विजयते ॥२९

तव क्षण-चलित भृकुटि-लतिकाओं की आज्ञा का ले अवलम्ब।
जग रचते विधि, हरि पालन, हैं करते रुद्र नाश, जगदम्ब !॥
ईश्वर भी अपने शरीर का, कर लेते हैं फिर अवसान।
तथा सदा-शिव निज में, धारण करते सबको अन्त निदान ॥२४

तव युग चरणों की पूजा करने से त्रिगुण-जनित अविलम्ब—
तीनों देवों की पूजा भी, हो जाती है पूरी अम्ब !॥
क्योंकि निकट मणिपीठ मंजु जो धारण करता चरण त्वदीय।
सदा खड़े रहते ये जोड़े, निज मुकुटों पर कर कमनीय ॥२५

विधि पञ्चत्व प्राप्त करते हैं, पाते हैं हरि परम विराम।
कवलित-काल, काल भी होता, पाते धनद विनाश निकाम ॥
त्यों इन्द्र की सहस्र दृष्टियाँ, हो जातीं चिर निद्रा-लीन।
ऐसे महा-प्रलय में सति ! तव पति करते विहार स्वाधीन ॥२६

जप हो मेरा कथन, क्रियाएँ हो जाएँ सब मुद्रा और—
चलना-फिरना प्रदक्षिणा हो, होवै भोजन आहुति-ठौर ॥
निद्रा हो साष्टाङ्ग नमन मम, सब सुख आत्मार्पण हो जाय।
मेरी सब चेष्टाएँ हों तव, शिवे ! समर्चन की पर्याय ॥२७

जरा - मृत्यु - भय - हरनेवाले, अमृत को करके नित पान।
विधि-इन्द्रादिक-अमर-गणों को, तजने पड़ते हैं निज प्राण ॥
किन्तु, हलाहल विष पीकर भी, कभी न होता शिव का अन्त।
यह तव कर्णाभूषण - महिमा, है द्योतक सौभाग्य अनन्त ॥२८

"विधि ! किरीट को अलग हटाओ, दूर करो हरि ! मुकुट कठोर।
इन्द्र ! मुकुट तुम पृथक करो"—यों करते हैं तव परि-जन शोर ॥
ब्रह्मादिक के नमन - काल में, आते जब तव भवन महेश।
उनके अभ्युत्थान-काल में—'जय हो' वह सखि-कथन-विशेष ॥२९

चतुः - षष्ट्या तन्त्रैः सकलमति - सन्धाय भुवनम् ।
स्थितस्तत्तत्-सिद्धि - प्रसव - पर - तन्त्रैः पशु-पतिः ॥
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिल - पुरुषार्थैक - घटना ।
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षिति - तलमवातीतरदिदम् ॥३०

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीत-किरणः ।
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परमार - हरयः ॥
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता ।
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि ! नामावयवताम् ॥३१

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनोः ।
निधायैके नित्ये निरवधि - महा - भोग - रसिकाः ॥
भजन्ति त्वां चिन्ता-मणि-गुण-निबद्धाक्ष - वलयाः ।
शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभि - घृत-धाराऽऽहुति-शतैः ॥३२

शरीरं त्वं शम्भोः शशि - मिहिर - वक्षोरुह-युगम् ।
तवात्मानं मन्ये भगवति ! भवात्मानमनघम् ॥
अतः शेषः शेषीत्ययमुभय - साधारण - तया ।
स्थितः सम्बन्धो वां सम - रस - परानन्द - परयोः ॥३३

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदपि मरुत् - सारथिरसि ।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम् ॥
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्व - वपुषा ।
चिदानन्दाकारं शिव - युवति ! भावेन विभृषे ॥३४

तवाज्ञा-चक्रस्थं तपन - शशि - कोटि - द्युति-धरम् ।
परं शम्भुं वन्दे परि - मिलित - पार्श्वं पर-चिता ॥
यमाराध्यन् भक्त्या रवि - शशि - शुचीनामविषये ।
निरालोकेऽलोके निवसति हि भा - लोक - भवने ॥३५

सिद्धि-कामनावालों को, कर चौंसठ तन्त्रों का निर्माण।
शिव ने उलझा दिया जगत में, बतला उनको सिद्धि-विधान ॥
पर तव-आज्ञा से, समस्त पुरुषार्थों का जो करता दान।
उस त्रैपुर स्वतन्त्र आगम को, किया उन्होंने प्रकट निदान ॥३०

'शङ्कर-शक्ति-अनङ्ग-भूमि-रवि', 'शशि-कन्दर्प-हंस-देवेश'।
'परा-मदन-हरि'—इन तीनों के अन्त, जोड़ 'माया' सविशेष ॥
जननि ! तुम्हारे 'हादि' मन्त्र के, होते अवयव वर्ण प्रधान।
जप कर जिनको साधक पाते, ब्रह्मादिक-दुर्लभ निर्वाण ॥३१

उक्त मन्त्र के प्रथम तीन वर्णों को, करके पृथक सुजान।
योजित करके-'काम-योनि-श्री'-महा-भोग के रसिक महान ॥
चिन्ता-मणि-माला के द्वारा, गो-घृत-धारा से विद्वान—
कर शिवाग्नि में होम, निरन्तर करते शतशः आहुति-दान ॥३२

शिव-शरीर हो, चन्द्र-सूर्य वक्षोरुह वाली भगवति ! आप।
तव आत्मा को एक मानता हूँ, मैं शिव-आत्मा निष्पाप ॥
अतः, शेष - शेषी इन दोनों में होने से एक समान।
सम-रस-परानन्द-स्वरूप-मय है, तव युग सम्बन्ध महान ॥३३

मन तुम, नभ तुम, अनिल-अनल तुम, जल-पृथ्वी हो तुम शिव वाम
यह है नहीं अन्य का मातः ! है तेरा ही सब परिणाम ॥
विश्व-रूप से तुम अपने को, करतीं परिणत लीलागार !
तथा तुम्हीं केवल रहती हो, सदा सच्चिदानन्दाकार ॥३४

तव आज्ञा-चक्रस्थ, कोटिशः सूर्य-चन्द्र के सम द्युति-मान।
पर-चिति-वाम-भाग-मय वन्दन करता परम शम्भु धर ध्यान ॥
जिनका कर स-भक्ति आराधन रवि-शशि-अग्नि-रहित स्व-प्रकाश।
(निरालोक-मय) साधक वर भा-लोक-भवन में करता वास ॥३५

विशुद्धौ ते शुद्ध - स्फटिक - विशदं व्योम-जनकम् ।
शिवं सेवे देवीमपि शिव - समान - व्यवसिताम् ।।
ययोः कान्त्या यान्त्याः शशि-किरण-सारूप्य-सरणेः ।
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ।।३६

समुन्मीलत् सम्वित् - कमल - मकरन्दैक - रसिकम् ।
भजे हंस - द्वन्द्वं किमपि महतां मानस - चरम् ।।
यदालापादष्टादश - गुणित - विद्या - परिणतिः ।
यदाऽऽदत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव ।।३७

तव स्वाधिष्ठाने हुत - वहमधिष्ठाय निरतम् ।
तमीडे सम्वर्तं जननि ! महतीं तां च समयाम् ।।
यदाऽऽलोके लोकान् दहति महति क्रोध - कलिते !
दयार्द्रा यद् - दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ।।३८

तडिद् - वन्तं शक्त्या तिमिर-परि-पन्थि-स्फुरणया ।
स्फुरन्नाना - रत्नाभरण - परिणद्धेन्द्र - धनुषम् ।।
तव श्यामं मेघं कमपि मणि - पूरैक - शरणम् ।
निषेवे वर्षन्तं हर - मिहिर - तप्तं त्रि - भुवनम् ।।३९

तवाधारे मूले सह समयया लास्य - परया ।
नवात्मानं मन्ये नव - रस - महा - ताण्डव-नटम् ।।
उभाभ्यामेताभ्यामुदय - विधिमुद्दिश्य दयया ।
स - नाथाभ्यां जज्ञे जनक - जननी - मज्जगदिदम् ।।४०

गतैर्माणिक्यत्वं गगन - मणिभिः सान्द्र - घटितम् ।
किरीटं ते हैमं हिम - गिरि - सुते ! कीर्तयति यः ।।
स नीडे यच्छायाच्छुरण - शवलं चन्द्र - शकलम् ।
धनुः-शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम् ।।४१

शिवे ! त्वदीय विशुद्ध-चक्र में, स्वच्छ-स्फटिक-समान विशुद्ध–
व्योम-जनक शिव तथा उन्हीं सम, व्यवसित देवी भजूं प्रबुद्ध ॥
जिनकी कान्ति हृदय-तम-हारिणि चन्द्र-किरण की सरणि-समान ।
सब जगती है—देखा करती, चारु चकोरी-सी मुद-मान ॥३६

विकसित सम्वित्-रूपी सरसीरुह—पराग का रसिक प्रधान ।
हंस-युग्म को भजूं महज्जन-मानस में, है जो रम-माण ॥
जिसके सम्भाषण से, होता अष्टादश विद्या - विस्तार ।
गुण से दोष विलग करता त्यों, वारि-दुग्ध-सा भले प्रकार ॥३७

जो तव स्वाधिष्ठान - चक्र में, अग्नि-स्थित हैं सम्वर्तेश ।
जननि ! महा-समया-युत, उनको करता मैं प्रणाम सविशेष ॥
जिनके महा-क्रोध करने पर, जलने लगता जब संसार ।
करती दयार्द्र-दृष्टि तुम्हारी, तब उसका शीतल उपचार ॥३८

तिमिर-नाशिनी सदा शक्ति-मयि विद्युत-सम कलकान्ति-निधान–
नाना रत्नाभरण-विभूषित, इन्द्र-धनुष-सा प्रकट महान ॥
हर रवि-सन्तापित त्रि-भुवन को करता हुआ तृप्त अभिराम ।
सेवन करूँ सुधा बरसाता, मणिपूर-स्थित तव घन-श्याम ॥३

लास्य-परायणि समया सह नव रस-ताण्डव-कारी नट-राज ।
जो कि नवात्म-रूप से, मूलाधार-चक्र में रहे विराज ॥
जिन दोनों के दया-भाव से, मात-पिता-मय यह संसार—
होता है उत्पन्न, उन्हें मैं वन्दन करता वारम्बार ॥४०

द्वादश रवि से सघन विनिर्मित, जो उत्तम माणिक्य-समान–
है तव हेम-मुकुट, गिरि-तनये ! उसका जो जन करता गान–
उसे तुम्हारे भाल-चन्द्र में, इन्द्र-धनुष होता प्रति-भात ।
क्योंकि, किरीट-कान्ति पड़ने से विविध भाँति वह होता ज्ञात ॥४१

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलित - दलितेन्दीवर - वनम् ।
घन-स्निग्ध-श्लक्ष्णं चिकुर - निकुरुम्बं तव शिवे ! ॥
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सु - मनसो ।
वसन्त्यस्मिन् मन्ये बल - मथन-वाटी - विटपिनाम् ॥४२

वहन्तो सिन्दूरं प्रबल - कबरी - भार - तिमिर—
द्विषां वृन्दैर्बन्दी - कृतमिव नवीनार्क - किरणम् ॥
तनोतु क्षेमं नस्तव वदन - सौन्दर्य - लहरी—
परीवाह - स्रोतः सरणिरिव सीमान्त - सरणिः ॥४३

अरालैः स्वाभाव्यादलि - कलभ - स-श्रीभिरलकैः ।
परीतं ते वक्त्रं परि - हसति पंकेरुह - रुचिम् ॥
दर - स्मेरे यस्मिन् दशन - रुचि-किञ्जल्क-रुचिरे ।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मर - दहन - चक्षुर्मधु - लिहः ॥४४

ललाटं लावण्य - द्युति - विमलमाभाति तव यद्—
द्वितीयं तन्मन्ये मुकुट - घटितं चन्द्र - शकलम् ॥
विपर्यास - न्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः ।
सुधा - लेप - स्यूतिः परिणमति राका - हिमकरः ॥४५

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद्-भुवन-भय - भङ्ग - व्यसनिनि !
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकर - रुचिभ्यां धृत - गुणम् ॥
धनुर्मन्ये सव्येतर - कर - गृहीतं रति - पतेः ।
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे ! ॥४६

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मक - तया ।
त्रि - यामां वामं ते सृजति रजनी - नायक - तया ॥
तृतीया ते दृष्टिर्दर - दलित - हेमाम्बुज - रुचिः ।
समाधत्ते सन्ध्यां दिवस - निशयोरन्तर - चरीम् ॥४७

फुल्लेन्दीवर-बन-सा जो मृदु, घन-स्निग्ध सौन्दर्य - निधान।
जिसकी सहज सुगन्धि-प्राप्ति को नन्दन-कानन-सुमन प्रधान ॥
आ-आकर करते हैं निश्चय, शिवे! सर्वदा जिसमें वास।
वह तव केश-कलाप हमारे, हृदय-तिमिर का करैं विनाश ॥४२

शुभ सिन्दूर-भरी अति श्यामल, केश-पाटियों-मध्य ललाम।
वैरि-वृन्द-कृत बन्दी-सी, ज्यों नव आदित्य-किरण छवि-धाम–
जो तव मुख-सौन्दर्य-तरङ्ग-प्रवाह-स्रोत की सरणि-समान—
है, वह श्रीसीमन्त तुम्हारी, करै हमारा नित कल्याण ॥४३

अलि-शिशुओं-सी, स्वतः कुञ्चिता अलकों से शोभा-शाली—
तव मुख ने कमलों की छवि की, बड़ी हँसी है कर डाली ॥
जिसकी स्मिति से दशन-कान्ति-मयि मधु-सुगन्धि के मतवाले–
मदन-दहन के नयन-मधु-व्रत, हो जाते हैं मतवाले ॥४४

तव ललाट-लावण्य-विमल-द्युति का है जो माँ! परम प्रकाश।
मुकुट-घटित वह मानों, दूजा चन्द्र-खण्ड का है आभास ॥
दोनों के विपरीत भाग मिल जाने से, जो रुचिर अनूप—
सुधा-लेप - प्रवाह होने से, होता पूर्ण चन्द्र का रूप ॥४५

भव-भय-हारिणि! कुटिल भृकुटिएँ हैं त्वदीय ज्यों धनुष ललाम–
मधुकर-मयी युगल नयनों की, मौर्वी-युत जो है अभिराम ॥
वाम पाणि में उसको, धारण किए हुए है काम निदान।
अतः उमे! भ्रू - धनुष-मध्य में, मुष्टि पकड़ने का है स्थान ॥४६

दिवस प्रकट करता है दक्षिण, देवि! सूर्य-मय नयन त्वदीय।
करता है उत्पन्न निशा को, शशि-मय वाम नयन कमनीय ॥
किञ्चित् विकसित स्वर्ण-कमल के सम छवि-शाली नयन तृतीय।
प्रकटित करता दिवस-रात्रि के मध्य प्राप्त सन्ध्या रमणीय ॥४७

विशाला कल्याणी स्फुट - रुचिरयोध्या कुवलयैः ।
कृपा-धाराऽऽधारा किमपि मधुराभोग - वतिका ॥
अवन्ती दृष्टिस्ते बहु - नगर - विस्तार - विजया ।
ध्रुवं तत् - तन्नाम - व्यवहरण - योग्या विजयते ॥४८

कवीनां सन्दर्भ-स्तबक - मकरन्दैक - रसिकम् ।
कटाक्ष - व्याक्षेप - भ्रमर - कलभौ कर्ण - युगलम् ॥
अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नव - रसास्वाद - तरला—
वसूया - संसर्गादलिक - नयनं किञ्चिदरुणम् ॥४९

शिवे ! शृङ्गारार्द्रा तदितर - जने कुत्सन - परा ।
स-रोषा गङ्गायां गिरिश-चरिते ! विस्मय - वती ॥
हरादिभ्यो भीता सरसिरुह - सौभाग्य - जयिनी ।
सखीषु स्मेरा ते मयि जननि ! दृष्टिः स - करुणा ॥५०

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती ।
पुरां भेत्तुश्चित्त - प्रशम - रस - विद्रावण - फले ॥
इमे नेत्रे गोत्राधर - पति - कुलोत्तंस - कलिके !
तवाकर्णाकृष्ट - स्मर - शर - विलासं कलयतः ॥५१

विभक्त - त्रै - वर्ण्यं व्यतिकरित - नीलाञ्जन-तया ।
विभाति त्वन्नेत्र - त्रितयमिदमीशान - दयिते ! ॥
पुनः स्रष्टुं देवान् द्रुहिण - हरि - रुद्रानु - परतान् ।
रजः सत्त्वं विभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ॥५२

पवित्री - कर्तुं नः पशुपति - पराधीन - हृदये !
दया - मित्रैर्नेत्रैररुण - धवल - श्याम - रुचिभिः ॥
नदः - शोणो गङ्गा - तपन - तनयेति ध्रुवममुम् ।
त्रयाणां तीर्थानामुप - नयसि सम्भेदमनघे ! ॥५३

देवि ! विशाला कल्याणी कुवलयाति रुचिर अयोध्या और—
करुणा - धारा धारा - नगरी, मधुरा भोगवती शिर - मौर।
तथा अवन्ती दृष्टि तुम्हारी, जयिनी बहु नगरी - विस्तार,
उन-उन नामों से व्यवहृत जो, जय हो उसकी बारम्बार ॥४८

कवि-जन-सूक्ति-प्रसून-मञ्जरी की, मकरन्द-सुरभि से पूर्ण—
युग कटाक्ष-विस्फुरण-भ्रमर-शिशु नव-रस-आस्वादन-हित-तूर्ण—
नहीं त्यागते युग कर्णों को—यह तव भाल-नयन लख हाल,
ईर्ष्या करने के कारण से, हो जाता है किञ्चित् लाल ॥४९

शिव में है शृङ्गार - रसार्द्रा, अन्य सुरों में ग्लानि - वती,
हर - चरित्र में विस्मयवाली, भव - भुजगों से भीत अती।
कमल-श्री-जय-कारिणि, गङ्गा पर है रोष - मयी अरुणा,
सखी-जनों में हास्य तथा मुझ पर है दृष्टि जननि ! करुणा ॥५०

तव विशाल आकर्ण नयन युग, धारें जो पलकों के बाण,
उन्हें खींच कानों तक अपने, करता कामदेव सन्धान।
हे हिम-शैलराज-कुल-कलिके ! मातः ! जिससे अहो ! तुरन्त-
हो जाता है, त्रिपुर - विनाशक के मन से विराग का अन्त ॥५१

तीन वर्ण के त्रि-विलोचन तव, नीलाञ्जन से अति शोभित,
सत्त्व - रजस्तम त्रिगुण - युक्त हैं-श्वेत, श्याम एवं लोहित।
काल - धर्म से गत शरीर-त्रय, देवों को फिर देह-विशेष —
देकर; ईश्वर-प्राण-वल्लभे ! रचते ब्रह्मा - विष्णु - महेश ॥५२

पशु-पति-पराधीन-हृदये ! तव दया-मित्र त्रय-नेत्र विशाल—
हैं, जो तीन-वर्ण-मयि-द्युति से शोभित श्याम, श्वेत औ' लाल।
धारें वे नद शोण - जन्हुजा - यमुना तीर्थों का सङ्गम,
हे अनघे ! हम पतित सेवकों को करने को पावन-तम ॥५३

तवापर्णे ! कर्णे जप - नयन - पैशुन्य - चकिताः ।
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः ॥
इयं च श्रीर्बद्धच्छद - पुटक - वाटं कुवलयम् ।
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥५४

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती ।
तवेत्याहुः सन्तो धरणि - धर - राजन्य - तनये ! ॥
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः ।
परित्रातुं शंके परि - हृत - निमेषास्तव दृशः ॥५५

दृशा द्राघीयस्या दर - दलित - नीलोत्पल - रुचा ।
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ! ॥
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता ।
वने वा हर्म्ये वा सम - कर - निपातो हिम-करः ॥५६

अरालं ते पाली - युगलमग - राजन्य - तनये !
न केषामाधत्ते कुसुम - शर - कोदण्ड - कुतुकम् ॥
तिरश्चीनो यत्र श्रवण - पथ - मुल्लंघ्य विलसन् ।
अपाङ्ग - व्यासङ्गो दिशति शर-सन्धान-धिषणाम् ॥५७

सरस्वत्याः सूक्तीरमृत - लहरी - कौशल - हरीः ।
पिबन्त्याः शर्वाणि ! श्रवण - चुलुकाभ्यामविरलम् ॥
चमत्कार - श्लाघा - चलित - शिरसः कुण्डल-गणो ।
झणत् - कारैस्तारैः प्रतिं - वचनमाचष्ट इव ते ॥५८

स्फुरद् - गण्डाभोग - प्रति - फलित-ताटङ्क-युगलम् ।
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथ - रथम् ॥
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनि - रथमर्केन्दु - चरणम् ।
महा - वीरो मारः प्रमथ - पतये सज्जित - वते ॥५९

तव कर्णों से लगे दृगों को देख, पिशुनता का भय मान,
पलक बन्द कर डूबी रहतीं, जल में ही मछलियाँ सुजान।
दिन में स्वीय कपाट बन्द कर, कुवलय-छवि तज जाती म्लान,
तथा रात्रि में द्वार खोलकर, घुस आती है फिर अनजान ॥५४

तव पलकें खुलने - लगने से होता भव - उद्भव - संहार,
धरणी - धर - राजन्य-कन्यके ! कहते यों सत्-पुरुष विचार।
खुलने से भव - उद्भव होता, लगने से लय होता मात !
इसी हेतु, रक्षार्थ जगत के, तजा दृगों ने पलक - निपात ॥५५

विकसित नील कमल-छवि-सी तव दीर्घ दृष्टि जो है द्युति-मान,
दूरङ्गत मुझ दीन - हीन पर, हो जावै वह करुणा - वान।
इससे, मैं तो हो जाऊँगा धन्य, नहीं है कुछ तव हानि,
क्योंकि, वनों में औ महलों में, सम प्रकाश करता शशि दानि ॥५६

पर्वत-राज-सुते ! तव बाली, दोनों शोभित चक्र - समान—
उन्हें कौन न कामदेव के, जानेगा कोदण्ड प्रधान ?
जिनमें से उल्लङ्घन करके श्रवण - मार्ग का, तिरछे वेष—
नयन-कटाक्ष आपके करते शर - सन्धान - बुद्धि सविशेष ॥५७

सरस्वती का सूक्ति-सुधा-मय, मनो-मुग्ध-कर सुन्दर गान—
कर्णों की चुलुकाओं से तुम, करनेवाली अविरल पान।
करती हो जब परम प्रशंसा, शिर हिलने से कुण्डल-गण—
'झणत्कार' तारों के द्वारा, करते हैं मुख से वर्णन ॥५८

तव मुख, जिसमें ताटङ्कों से हैं, बिम्बित कपोल अभिराम,
उसे मानता मैं मन्मथ का, चारु चक्र - युत रथ छवि-धाम।
जिसमें बैठ, रवीन्दु - चक्र - मय भू - रथवाले हर का मन—
करके क्षुब्ध महा - वीर स्मर, हो जाता विजयी तत्क्षण ॥५९

असौ नासा - वंशस्तुहिन - गिरि - वंश-ध्वज-पटि !
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम् ॥
वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिर - तर - निश्वास - घटिताः ।
समृद्धया यत् तासां बहिरपि च मुक्ता - मणि-धरः ॥६०

प्रकृत्या रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छद - रुचेः ।
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुम - लता ॥
न बिम्बं त्वद् - बिम्ब - प्रति-फलन-रागादरुणितम् ।
तुला - मध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया ? ॥६१

स्मित-ज्योत्स्ना-जालं तव वदन-चन्द्रस्य पिबताम् ।
चकोराणामासीदति - रस - तया चञ्चु - जडिमा ॥
अतस्ते शीतांशोरमृत - लहरीमाम्ल - रुचयः ।
पिबन्ति स्वच्छदं निशि निशि भृशं काञ्जिक-धिया ॥६२

अविश्रान्तं पत्युर्गुण - गण - कथाऽऽम्रेडन - जपा ।
जपा-पुष्पच्छाया तव जननि ! जिह्वा जयति सा ॥
यदग्रासीनायाः स्फटिक - दृषदच्छच्छवि - मयी ।
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्य - वपुषा ॥६३

रणे जित्वा दैत्यानपहृत - शिरस्त्रैः कवचभिः ।
निवृत्तैश्चण्डांश - त्रिपुर - हर - निर्माल्य - विमुखैः ॥
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशि - विशद - कर्पूर - शकलाः ।
विलीयन्ते मातस्तव वदन - ताम्बूल - कबलाः ॥६४

विपञ्च्या गायन्ती विविधमपदानं पुर - रिपोः ।
त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलित - शिरसा साधु - वचने ॥
तदीयैर्माधुर्यैरपलपित - तन्त्री - कल - रवाम् ।
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥६५

जिसके भीतर हैं शीतल निःश्वास - जनित मुक्ता स - विशेष,
त्यों समृद्धि से जिनके, मुक्ता - मणि - धारी है बहिः-प्रदेश ।
हे हिम-गिरि-वर-वंश-पताके ! वह यह नासा - वंश त्वदीय,
हम सब दीन-जनों को सन्तत समुचित फलै सु-फल कमनीय ।।६०

तव स्वाभाविक लाल अधर का, छवि-सादृश्य कौन उपमान ?
विद्रुम - लतिका फल - हीना है और न उन सी शोभावान ।
तथा विम्ब तव अधर-बिम्व के, कभी न है इक कला-समान,
तव अरुणाई पाकर हैं, सब लाल वस्तुएँ लज्जा - वान ।।६१

तव मुख-शशि की स्मित-ज्योत्स्ना का, अमृत पीने से अत्यन्त—
अहो ! समस्त चकोरों की, हो गईं चञ्चुएँ जड़िमा-वन्त ।
ओषधीश की अतः सुधा-लहरी-काञ्जी को, वे नित-रात—
पीते हैं, माधुर्य-जनित निज जाड्य-निवारण को अवदात ।।६२

जो निज पति के ही गुण - गण को, जपती रहती बारम्बार,
गुड़हल-पुष्प-समान, तुम्हारी, जयति जननि ! जिह्वा सुकुमार ।
स्फटिक-तुल्य छवि-मयी भारती, जिस पर रहने के कारण—
करती है माणिक्य-सदृश, अति अरुण वर्ण - मय तनु धारण ।।६३

जीत युद्ध में दैत्य - गणों को, उनके कवच - मुकुट को छीन,
आकर, शम्भु-प्रसाद-विमुख जो रहे जान चण्डांश - अधीन ।
वे ही गुह, हरि, इन्द्र, चन्द्र-सम, स्वच्छ खण्ड कर्पूर समेत—
मातः ! तव ताम्बूल - कणों को, करते हैं स्वीकृत समवेत ।।६४

शम्भु - पराक्रम सरस्वती, जब करती हैं वीणा में गान,
शीश हिलाकर तब तुम उसका, 'साधु-साधु' कह करतीं मान ।
इन वचनों की मधुराई से, हो जाता तन्त्री - स्वर मन्द,
अतः उसे कर लेती है, वह लज्जित हो खोली में बन्द ।।६५

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिन - गिरिणा वत्सल - तया ।
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधर - पानाकुल - तया ॥
कर - ग्राह्यं शम्भोर्मुख - मुकुर - वृन्तं गिरि-सुते !
कथं कारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्य - रहितम् ॥६६

भुजाश्लेषान्नित्यं पुर - दमयितुः कण्टक - वती ।
तव ग्रीवा धत्ते मुख - कमल - नाल - श्रियमियम् ॥
स्वतः श्वेता कालागुरु - बहुल - जम्बाल-मलिना ।
मृणाली - लालित्यं वहति यदधो हार - लतिका ॥६७

गले रेखास्तिस्रो गति - गमक - गीतैक - निपुणे !
विवाह - व्यानद्ध - प्रगुण - गुण - संख्या-प्रति-भुवः ॥
विराजन्ते नाना - विध - मधुर - रागाकर-भुवाम् ।
त्रयाणां ग्रामाणां स्थिति-नियम-सीमान इव ते ॥६८

मृणाली - मृद्वीनां तव भुज - लतानां चतसृणाम् ।
चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिज - भवः स्तौति वदनैः ॥
नखेभ्यः सन्त्रस्यन् प्रथम - मथनादन्धक - रिपोः ।
चतुर्णां शीर्षाणां सममभय - हस्तार्पण - धिया ॥६९

नखानामुद्योतैर्नव - नलिन - रागं विहसताम् ।
कराणां ते कान्ति कथय कथयामः कथमुमे ! ॥
कयाचिद् वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलम् ।
यदि क्रीडल्लक्ष्मी - चरण - तल - लाक्षारुण-दलम् ॥७०

समं देवि ! स्कन्द - द्विप - वदन - पीतं स्तन-युगम् ।
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुत - मुखम् ॥
यदाऽऽलोक्याशङ्काऽऽकुलित-हृदयो हास - जनकः ।
स्व - कुम्भौ हेरम्बः परि-मृशति हस्तेन झटिति ॥७१

हिम-गिरि ने वत्सलता-वश है, जिसे किया हाथों से प्यार,
अधर-पान के हेतु शम्भु ने, जिसे उठाया बारम्बार।
तव मुख-मुकुर-नाल-सा, जिसको शिव ने पकड़ा है स-विलास,
उस तव अनुपम चिबुक-कथन का, कर सकता है कौन प्रयास ? ॥६६

श्री त्रिपुरारि - भुजालिङ्गन से, जो सन्तत कण्टकवाली,
तव ग्रीवा, मुख-कमल-नाल-सी, है सुन्दर छवि की डाली।
स्वतः श्वेत पर कालागरु - लेपन से, जो शैवल - सी श्याम,
मुक्ता - माला मञ्जु मृणाली-सी, वह दिखती है अभिराम ॥६७

तव, गति-गमक-गति-वर-निपुणे ! कण्ठ सु-रेखाएँ जो तीन—
हैं, माङ्गलिक सूत्र-'प्रगुण-गुण' वे कन्या-विवाह-कालीन।
वा नाना - विध मधुर राग - समूहों की, हैं प्रकट - स्थान,
अथवा हैं गान्धार, सु-मध्यम षड् - ग्राम - नियम - सीमान ॥६८

तव चारों भुज - लतिकाएँ हैं, मञ्जु मृणाली-सदृश ललाम,
गाते रहते चारों मुख से, चतुरानन जिनके गुण - ग्राम।
क्योंकि, उन्हें अन्धक-रिपु-नख से है, पहले का अति ही त्रास,
अतः, चतुर्मुख-रक्षणार्थ निज है, वह उनका स्तुति - प्रयास ॥६६

जिनकी नख-द्युति करती, नव शत-पत्र-प्रभा का, है उपहास—
उन तव युग कर-छवि का कैसे, कर सकता मैं कथन-प्रयास ?
यदि खेलती हुई लक्ष्मी के, पद-तल-लाक्षा-अरुण ललाम—
नव अम्भोज-दलों से जो हो, तो हो कुछ समता का काम ॥७०

अम्ब ! षडानन तथा गजानन करते हैं, जिनका सम पान,
जिन्हें देख शङ्काकुल मन से, गज-मुख अपने मस्तक जान—
निज कुम्भों पर शुण्ड फेरकर, करवा देते हैं, अति हास,
वे पय - पूरित युगल पयोधर, हरें हमारे सन्तत त्रास ॥७१

अमू ते वक्षोजावमृत - रस - माणिक्य - कुतुपौ ।
न सन्देह - स्पन्दो नग-पति - पताके ! मनसि नः ॥
पिबन्तौ तौ यस्मादविदित - वधू - सङ्गम - रसौ ।
कुमारावद्यापि द्विरद - वदन - क्रौञ्च - दलनौ ॥७२

वहत्यम्ब ! स्तम्बे-रम-दनुज - कुम्भ - प्रकृतिभिः ।
समारब्धां मुक्ता - मणिभिरमलां हार - लतिकाम् ॥
कुचाभोगो बिम्बाधर - रुचिभिरन्तः - शबलिताम् ।
प्रताप - व्यामिश्रां पुर - दमयितुः कीर्तिमिव ते ॥७३

तव स्तन्यं मन्ये धरणि - धर - कन्ये ! हृदयतः ।
पयः - पारावारः परि - वहति सारस्वतमिव ॥
दयावत्या दत्तं द्रविड - शिशुरास्वाद्य तव यत् ।
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥७४

हर - क्रोध - ज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा ।
गभीरे ते नाभी - सरसि कृत - सङ्गो मनसिजः ॥
समुत्तस्थौ तस्मादचल - तनये ! धूम - लतिका ।
जनस्तां जानीते तव जननि ! रोमावलिरिति ॥७५

यदेतत् कालिन्दी - तनु - तर - तरङ्गाकृति शिवे !
कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि ! तव तद् भाति सुधियाम् ॥
विमर्दादन्योऽन्यं कुच - कलशयोरन्तर - गतम् ।
तनू - भूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरिणीम् ॥७६

स्थिरो गङ्गाऽऽवर्तः स्तन-मुकुल-रोमावलि-लता—
निजावालं कुण्डं कुसुम - शर - तेजो हुत - भुजः ॥
रतेर्लीलाऽऽगारं किमपि तव नाभिर्गिरि - सुते !
बिल - द्वारं सिद्धेर्गिरिश - नयनानां विजयते ॥७७

हे नग - राज - पताके ! इसमें न है, तनिक सन्देह - स्थान,
अमृत-रस-परिपूर्ण तुम्हारे कुच हैं, माणिक - कुम्भ-समान।
जिन्हें पान कर अब तक दोनों, हैं कुमार गणनाथ - कुमार,
कामिनि-सङ्गम का जिनके मन कभी न कुछ भी हुआ विचार ।।७२

देवि ! गजासुर-कुम्भ-जनित-मुक्ता-मणियों का निर्मल हार—
तव कुच-मण्डल धारण करने (परम मनोहर सुषमा-सार)।
वह तव बिम्बाधार-छाया से, मध्य-भाग में अरुण ललाम—
दिखता, शम्भु-प्रताप-कीर्ति का सम्मिश्रण हो ज्यों अभिराम ।।७३

गिरि - कन्ये ! तव पयोधरों का है, जो उत्तम दुग्ध अपार,
वह तव हृत् - तल से है, निकला सारस्वत पय - पारावार।
जिसे द्रविड़-शिशु को दयार्द्र हो, अम्ब ! कराया तुमने पान,
जिससे वह कवियों में सुन्दर, काव्य - रचयिता हुआ महान ।।७४

महादेव की क्रोध - ज्वाला - माला से, हो तप्त शरीर—
तव गम्भीर नाभि-सरसी में, जाकर मनसिज छुपा अधीर।
हे गिरि-राज-सुते ! उससे जो निकली—धूम - लता अत्यन्त,
उसको ही संसार समझता है, तव रोमावलि द्युति - मन्त ।।७५

त्रिपुरे ! यमुना सूक्ष्म-वीचि-सी, कोई नीली वस्तु ललाम—
तव कृश मध्य-भाग में, भासित होती है सुधियों को क्षाम।
कुच-कलशों के बीच, उन्हीं के सङ्घर्षण से पिस स-विशेष—
चूर्ण हुआ नभ करता तव, गम्भीर 'कुहरिणी' नाभि-प्रवेश ।।७६

मदन-तेज का अग्नि-कुण्ड है, गङ्गा का है स्थिर - आवर्त्त।
कुच-कलियों की रोम - लता के, है वा आलवाल का गर्त्त ?
गिरि-सुते ! तुम्हारी वह गभीर अति जयति नाभि रति-लीलागार,
शिव के नयनानन्द - सिद्धि की, जो है शैल - गुहा का द्वार ।।७७

निसर्ग - क्षीणस्य स्तन - तट - भरेण क्लम-जुषो ।
नमन्मूर्तेर्नाभौ वलिषु च शनैस्त्रुट्यते इव ॥
चिरं ते मध्यस्य त्रुटित - तटिनी - तीर - तरुणा ।
समावस्था - स्थेम्नो भवतु कुशलं शैल - तनये ! ॥७८

गुरुत्वं विस्तारं क्षिति-धर-पतिः पार्वति ! निजात् ।
नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरण - रूपेण निदधे ॥
अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसु - मतीम् ।
नितम्ब - प्राग् - भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥७९

कुचौ सद्यः स्विद्यत्-तट - घटित- कूर्पास - भिदुरौ ।
कषन्तौ दोर्मूले कनक - कलशाभौ कलयताम् ॥
तव त्रातुं भङ्गादलमिति विलग्नं तनु - भुवा ।
त्रिधा नद्धं देवि ! त्रि - वलि लवली-वल्लिभिरिव ॥८०

करीन्द्राणां शुण्डान् कनक-कदली - काण्ड - पटलीम् ।
उभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवति ! ॥
सु-वृत्ताभ्यां पत्युः प्रणति - कठिनाभ्यां गिरि - सुते !
विजिग्ये जानुभ्यां विबुध - करि - कुम्भ - द्वयमपि ॥८१

पुरा जेतुं रुद्रं द्वि-गुण- शर - गर्भौ गिरि - सुते !
निषङ्गौ जंघे ते विषम - विशिखो बाढमकृत ॥
यदग्रे दृश्यन्ते सित - शर - फलाः पाद - युगली—
नखाग्रच्छद्मानः सुर-मुकुट - शाणैक - निशिताः ॥८२

श्रुतीनां मूर्द्धानो दधति तव यौ शेखर - तया ।
ममाप्येतौ मातः ! शिरसि दयया धेहि चरणौ ॥
ययोः पाद्यं पाथः पशु-पति-जटा - जूट - तटिनी ।
ययोर्लाक्षा-लक्ष्मीररुण-हरि - चूडा - मणि - रुचिः ॥८३

स्वाभाविक जो क्षीण, गमन में झोंका खाती स्तन के भार,
नाभि और त्रिवली-स्थानों में, पतली है जो अति सुकुमार।
एवं सरिता - तट के टूटे - झुके हुए, जो वृक्ष समान,
शैल-बालिके ! उस तव कटि की, सदा कुशलता रहे महान ॥७८

निज गुरुत्व-विस्तार, स्व-गृह से पार्वति ! तव पितु गिरि हिमवान–
तव उद्वाह - समय दहेज में, सारा है कर दिया प्रदान।
अतः, इसी कारण से हैं, जो तव युग गुरु-विस्तीर्ण नितम्ब—
वे सब पृथ्वी को स्थिर करते, देते उसको लघुता अम्ब ! ॥७९

तव कुच, यौवन-मद-ऊष्मा के जल-कण से, अति शोभा-वन्त–
सुदृढ़ कञ्चुकी को भेदन कर, हैं जो बाहु - मूल पर्यन्त।
कामदेव ने कनक-कलश-सम उनकी, अति गुरुता सु-विचार,
त्रिवली-वल्ली - द्वारा उनको, मध्य कस दिया भले प्रकार ॥८०

करि-वर-शुण्डों को त्यों, काञ्चन-कदली-काण्डों को अविलम्ब–
दोनों जङ्घाओं से दोनों को, जय कर लेतीं तुम अम्ब !
पति-प्रणाम से कठिन गोल युग, जो हैं तव पिण्डली द्युति-मन्त–
उनसे जय कर लेती हो तुम, सुर-गज-कुम्भों को अत्यन्त ॥८१

प्रथम रुद्र - विजयार्थ, तुम्हारी जङ्घाओं के कर तूणीर—
उनमें अपने वाण द्वि-गुण कर, रखता हुआ पञ्च-शर वीर।
जिनके अग्र-भाग चरणांगुलि-नख-मय-फल हैं ज्योतिष्मान,
किए गए जो अधिक तीक्ष्ण हैं, चढ़कर सुर-मुकुटों की शाण ॥८२

जिन्हें उपनिषद् धारण करते निज शिर पर, आभूषण मान,
मेरे सिर पर भी रखिए निज, मातः ! वे पद दया-निधान।
पशु-पति - जटा - जूट की गङ्गा, जिनका है पाद्याम्बु विशेष,
तथा अरुण हरि-चूडा-मणि-छवि है, जिनकी लाक्षा-श्री-लेश ॥८३

हिमानी-हन्तव्यं हिम-गिरि-निवासैक-चतुरौ ।
निशायां निद्राणं निशि चरम-भागे च विशदौ ॥
वरं लक्ष्मी-पात्रं श्रियमति-सृजन्तौ समयिनाम् ।
सरोजं त्वत्-पादौ जननि ! जयतश्चित्रमिह किम् ॥८४

नमो वाकं ब्रूमो नयन - रमणीयाय पदयोः ।
तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुट-रुचिर-सालक्तक-वते ॥
असूयत्यत्यन्तं यदभि - हननाय स्पृहयते ।
पशूनामीशानः प्रमद-वनकं केलि - तरवे ॥८५

मृषा कृत्वा गोत्र-स्खलनमथ वैलक्ष्य-नमितम् ।
ललाटे भर्तारं चरण - कमले ताडयति ते ॥
चिरादन्तः - शल्यं दहन-कृतमुन्मूलित-वता ।
तुला-कोटि-क्वाणैः किलि-किलितमीशान-रिपुणा ॥८६

पदं ते कान्तीनां प्रपदमपदं देवि ! विपदाम् ।
कथं नीतं सद्भिः कठिन-कमठी-खर्पर-तुलाम् ॥
कथंचिद् बाहुभ्यामुप-यमन - काले पुर-भिदा ।
यदाऽऽदाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥८७

नखैर्नाक-स्त्रीणां कर-कमल-सङ्कोच-शशिभिः ।
तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि ! चरणौ ॥
फलानि स्वस्थेभ्यः किसलय-कराग्रेण ददताम् ।
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ ॥८८

कदा काले मातः ! कथय कलितालक्तक-रसम् ।
पिबेयं विद्यार्थी तव चरण-निर्णेजन-जलम् ॥
प्रकृत्या मूकानामपि च कविता-कारण-तया ।
यदा धत्ते वाणी मुख-कमल-ताम्बूल-रसताम् ॥८९

हिम से नष्ट कमल होते, पर जो हिम-गिरि पर हैं छवि-मान,
कमल निमीलित निशि में होते, पर जो निशि-दिन शोभा-वान।
कमल रमा के पात्र, समयि-जन को करते पर जो श्री-दान,
ऐसे तव पद, पद्म - जयी माँ ! इसमें कुछ आश्चर्य न जान ॥८४

नयनानन्द-जनक तव चरणों को, करते हम नित्य प्रणाम—
जो कि रुचिर रस-युक्त महावर से, अतिशय हैं शोभा-धाम।
जिनके ताड़न की अभिलाषा, रखने से निज हृदय - प्रदेश,
सदा प्रमद-वन के अशोक-तरु से, करते हैं द्वेष महेश ॥८५

तुमसे अन्य बधू का, मिथ्या नाम - ग्रहण से लज्जावान,
तव पद-पद्मों से तव भर्त्ता, शम्भु - भाल को ताड़ित जान।
पूर्व दहन - कृत मनः-शल्य से, दुःखित चिर वैरी वह मार—
नूपुर-ध्वनि-मिस 'सिंह-नाद' कर, गरजा करता बारम्बार ॥८६

विपद-अपद-कर तव पद कोमल, जो हैं अनुपम कान्ति-स्थान,
उन्हें सुधी-गण कैसे कहते, कठिन कमठ की पीठ - समान ?
त्यों विवाह में दया-युक्त मन से, शिव ने कर उन्हें ग्रहण—
निज हाथों से पत्थर पर है, किया अहो ! कैसे स्थापन ? ॥८७

नख-शशि से करते, सुर-ललना-कर-कमलों का बन्द विकास,
तथा कल्प - पादप का करते, चण्डि ! तुम्हारे पद उपहास।
करता सुर-तरु स्वर्ग-वासियों को, किसलय-कर से फल-दान,
सभी दरिद्रों को, पर तव पद करते निशि-दिन लक्ष्मी-वान ॥८८

माँ ! हम विद्यार्थी-गण, कहिए मञ्जु महावर शुचि रस-वान,
चरण-कमल-प्रक्षालित जल तव, अहा ! करेंगे कब नित पान ?
स्वाभाविक जो मूकों को भी, कविता करने के कारण—
करता गिरा-मुखाम्बुज की, ताम्बूल - रुचिरता है धारण ॥८९

पद - न्यास - क्रीडा - परिचयमिवारब्धु-मनसः ।
चरन्तस्ते खेलं भवन-कल-हंसा न जहति ।।
स्व-विक्षेपे शिक्षां सुभग-मणि-मञ्जीर-रणित—
च्छलादाचक्षाणं चरण-कमलं चारु-चरितम् ।।९०

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनु-सदृशीम् ।
अमन्दं सौन्दर्य - प्रकर - मकरन्दं विकिरति ।।
तवास्मिन् मन्दारस्तबक - सुभगे यातु चरणे ।
निमज्जन् मज्जीवः करण-चरणः षट्-चरणताम् ।।९१

अराला केशेषु प्रकृति-सरला मन्द - हसिते ।
शिरीषाभा गाते दृषदिव कठोरा कुच - तटे ।।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोह - विषये ।
जगत्-त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा ।।९२

पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः ।
सपर्या - मर्यादा तरल - करणानामसुलभा ।।
तथा ह्येते नीताः शत-मख-मुखाः सिद्धिमतुलाम् ।
तव द्वारोपान्त - स्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः ।।९३

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिण - हरि - रुद्रेश्वर- भृतः ।
शिवः स्वच्छच्छाया-घटित-कपट-प्रच्छद-पटः ।।
त्वदीयानां भासां प्रति-फलन-रागारुण-तया ।
शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ।।९४

कलङ्कः कस्तूरी रजनि-कर-बिम्बं जल-मयम् ।
कलाभिः कर्पूरैर्मरकत - करण्डं निबिडितम् ।।
अतस्त्वद्-भोगेन प्रति-दिनमिदं रिक्त-कुहरम् ।
विधिर्भूयो भूयो निबिडयति नूनं तव कृते ।।९५

पद - विन्यास - ललित क्रीड़ा का, करने को मन से अभ्यास,
खेल-निरत गृह-राज-हंस रहते, तव पद - कमलों के पास।
उनको मणि-नूपुर-ध्वनि-मिस, तुम देतीं शिक्षा भले प्रकार,
अतः, न तजते तुम्हें कभी वे, शिक्षा में विक्षेप - विचार ॥९०

जो दीनों को लक्ष्मी देते, उनकी इच्छा के अनुकूल,
जो अमन्द सौन्दर्य - रूप मकरन्द, वहाते मञ्जुल फूल।
उन मन्दार-कुसुम-गुच्छक-सम, तव युग-चरणों में अभिराम,
षट् इन्द्रिय-पद-युक्त जीव मम, षट्-पद-सा हो रत वसु-याम ॥९१

केशों से अत्यन्त कुटिल जो, मन्द हास्य से सरल विशेष,
सुम शिरीष-आभा-सी मृदु-तनु, कठिन कुचों से ज्यों शैलेश।
कटि से अतिशय क्षीण तथा जघनों से, जो है पीन महान,
वह महेश की कोई अरुणा, करुणा करै जगत का त्राण ॥९२

महा-देव की पट्ट महा - रानी, होने के ही कारण,
अजितेन्द्रिय पुरुषों को है, दुष्प्राप्य तुम्हारा चरणार्चन।
पर, तव अन्तिम गृह-द्वार पर, अणिमादिक का जो है स्थान,
हो जाते इन्द्रादि अमर-गण, अहो ! वहीं से सिद्धि - निधान ॥९३

देवि ! तुम्हारे मञ्च - पाद हैं, ब्रह्मा - विष्णु - रुद्र - ईशान,
तथा सदा-शिव निर्मल छाया-घटित, कपट-आस्तरण प्रधान।
तव अङ्गों की अरुण-प्रभा से, प्रतिबिम्बित हैं वह शृङ्गार—
मानों मूर्त्तिमान हो करता, नयन - कुतूहल बारम्बार ॥९४

मरकत मणि-निर्मित, जल-मय यह गन्ध-पात्र है शशि-मण्डल,
जिसमें मृग - मद है कलङ्क, कर्पूर कलाओं का निर्मल।
उसे त्वदीय भोग से प्रति-दिन, कृष्ण-पक्ष में घटता जान—
शुक्ल में फिर उसको विधि, करते हैं पूर्णत्व प्रदान ॥९५

स्व - देहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो ।
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः ॥
किमाश्चर्यं तस्य त्रि-नयन-समृद्धिं तृणयतो ।
महा-सम्वर्ताग्निर्विरचयति नीराजन - विधिम् ॥९६

समुद्भूत - स्थूल-स्तन-भर-मुरश्चारु - हसितम् ।
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचन कदम्ब - द्युति - वपुः ॥
हरस्य त्वद्-भ्रान्ति मनसि जनयन्तः सु-वदने !
भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे ! ॥९७

कलत्रं वैधात्रं कति-कति भजन्ते न कवयः ।
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः ॥
महा-देवं हित्वा तव सति ! सतीनामचरमे !
कुचाभ्यामासङ्गः कुरबक - तरोरप्यसुलभः ॥९८

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिण - गृहिणीमागम - विदो ।
हरेः पत्नीं पद्मां हर-सहचरीमद्रि-तनयाम् ॥
तुरीया काऽपि त्वं दुरधिगम-निःसीम-महिमा ।
महा-माये ! विश्वं भ्रमयसि पर-ब्रह्म-महिषि ! ॥९९

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधि-हरि-सपत्न्यो विहरते ।
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ॥
चिरं जीवन्नेषः क्षपित-पशु-पाश-व्यतिकरः ।
पर-ब्रह्माभिख्यं रसयति रसं त्वद्-भजित-वान् ॥१००

निधे ! नित्य-स्मेरे ! निरवधि-गुणे ! नीति-निपुणे !
निराधार-ज्ञाने ! नियम-पर-चित्तैक-नियमे ! ॥
नियत्या निर्मुक्ते ! निखिल-निगमान्त-स्तुति-पदे !
निरातंके ! नित्ये ! निगमय ममापि स्तुतिमिमाम् ॥१०१

स्वीय शरीर-प्रकट-किरणावलि, औ' अणिमादिक से वेष्टित,
तव स्वरूप की 'अहं'-भावना, करता है जो नित्ये ! नित।
वह शिव की समृद्धि को तृण-वत्, गिनता–इसमें क्या आश्चर्य ?
प्रलयानल से भी नीराजन, करता है वह साधक - वर्य्य ॥९६

उर पर पीन पयोधर होते, हो जाता अति सुन्दर हास,
बहु मनोज कटाक्ष में रहते, होता तनु कदम्ब - सा भास।
उमे ! तुम्हारे भक्त - जनों का, ऐसा हो जाता परिणाम,
जो शिव-मन को भ्रान्त बनाता, धारण कर तव रूप ललाम ॥९७

विधि की गृहिणी सरस्वती के, कौन न पति हैं कवि गति-मान ?
लक्ष्मी देवी के भी होते कौन, न पाते जग में धन - वान ?
सति ! सतियों में अग्र-गण्य तुम, केवल महा - देव को त्याग,
कुरबक-तरु को भी अलभ्य अति है, छू लेना तव कुच-भाग ॥९८

विधि की पत्नी तुम्हें भारती, कहते आगम के विद्वान,
हरि की गृहिणी रमा, शम्भु-सहचरी करें गिरि-सुता बखान।
पर कोई हो आप तुरीया, महिमा तव दुर्ज्ञेय—अपार,
पर-ब्रह्म - पट - रानि ! भ्रमातीं तुम्हीं महा-माये ! संसार ॥९९

गिरा-रमा-पति हो करता, विधि-विष्णु-सपत्न-समान विहार,
सुन्दर तनु से करता है, रति - पातिव्रत्य शिथिल बेकार।
चिर-जीवी हो पशु-पाशों से, होता रहित सदा तव भक्त—
पर - ब्रह्म - नामक - रस-आस्वादन में रहता त्यों अनुरक्त ॥१००

निधे ! नित्य मुसकान-मुखी, निःसीम-गुणा हो, नीति-प्रवीण,
है स्वतन्त्र तव ज्ञान तथा, तुम नियमि-जनों के हृदयासीन।
नियति-विहीने ! करते सब उपनिषद्, त्वदीय चरण-गुण-गान,
अम्ब ! निर्भया, नित्या, तुम -यह ममनुति निज श्रुति-मध्य गृहाण ॥

प्रदीप-ज्वालाभिर्दिवस-कर - नीराजन - विधिः ।
सुधा - सूनोश्चन्द्रोपल - जल - लवैरर्घ्य - घटना ॥
स्वकीयैरम्भोभिः सलिल-निधि-सौहित्य-करणम् ।
त्वदीयाभिर्वाग्भिर्मम जननि ! वाचां स्तुतिरियम् ॥१०२

दीप-ज्योतियों से करना ज्यों, दिनकर का आर्तिक्य-विधान,
यथा सुधाकर को करना, शशि-मणि-जल-कण से अर्घ्य प्रदान ।
जल - निधि का उसके ही जल से, करना तर्पण तथा यथैव,
तव वाणी से करना यह, तव वाग्-रूपिणि ! है स्तवन तथैव ॥१०२
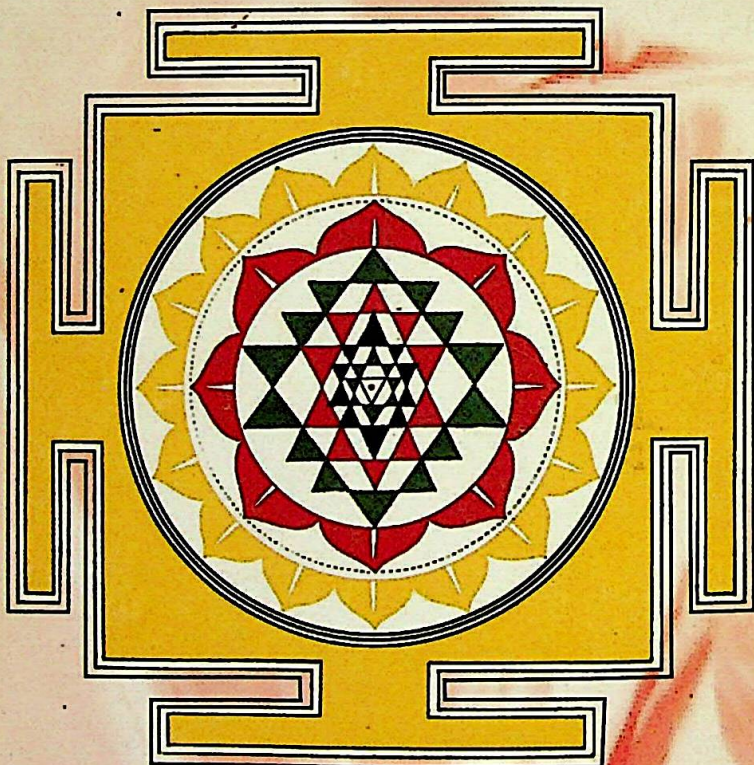
'श्री-चक्र' में ४३ त्रिकोणों में ४३ देवताओं की पूजा होती है। २४ पद्म में २४ शक्तियाँ पूजनीय हैं। त्रिवृत्तों में ५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ तन्मात्राएँ-कुल १५ हैं। चतुष्कोणों (भू-पुरों) में ५ महा-प्रेत + १० दिक् - पाल + ४ अन्त:करण-कुल १९ हैं।

इस प्रकार कुल १०१ यन्त्र 'श्री-चक्र' में निहित हैं, जो 'शताक्षरी' महा-मन्त्र के १०१ बीजाक्षरों से अधिष्ठित हैं। इन्हीं बीजाक्षरों से आदि शङ्कराचार्य ने 'सौन्दर्य-लहरी' की रचना की है।

-गुप्तावतार बाबाश्री